दिगम्बर जैन श्रमण परम्परा में

वर्षायोग

प. पू. राष्ट्रसंत युगप्रमुख गणाचार्य
श्री 108 विरागसागर जी महाराज

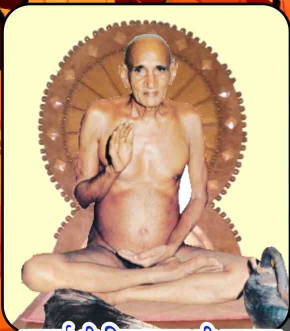

आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज

आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

प. पू. गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागर जी महाराज

:: पुर्ण्याजक ::

श्री अमित जैन – श्रीमती नेहा जैन सुपुत्री भव्या जैन

(भिण्ड वाले) इन्द्रापुरम, दिल्ली. मो.: 9643800842

दो शब्द

भारतीय संस्कृति में वर्षायोग व वर्षावास का अत्यधिक महत्त्व है। वैदिक और श्रमण दोनों परम्पराओं के साधु वर्षाऋतु के चार महिनों में एक स्थान पर ठहरकर धर्म की आराधना करते हैं। जैन श्रमण परम्परा में साधुओं के ठहरने और उनकी चर्या आदि के विषय में शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं कि उनका वर्षावास गिरि गुफा, वन, विमोचित आवास आदि में ही होना चाहिए, जहां साधुओं की ध्यान साधना निर्विघ्न सम्पन्न होती रहे। सम्प्रति ऐसे वन, गिरि गुफाओं आदि शान्तिपूर्ण स्थानों का अभाव होता जा रहा है। इसलिये वर्षाऋतु में चार माह के लिए ग्राम्य, नगर आदि के जिनमन्दिरों, धर्मशालाओं आदि में साधुओं के ठहरने की बाध्यता हो गई है। वर्षाऋतु के दिनों में इस तरह ठहरने को वर्षायोग कहा गया है। 'वर्षायोग' शब्द से भी उसकी सार्थकता सिद्ध है कि वर्षा की उस अवधि में योग अर्थात् धर्मध्यान करना व आत्मा से जुड़ना व श्रावकों का साधुओं से जुड़ना। श्रावक साधुओं से जुड़कर उनसे प्रवचन, स्वाध्याय आदि का लाभ प्राप्त करने के साथ उन्हें आहार, औषधि आदि दान देकर और उनकी वैयावृत्ति आदि करके महान् पुण्य का संचय करते हैं। यही कारण है कि श्रावक-समुदाय अपना पारलौकिक लाभ देखकर साधुओं का वर्षावास अपने नगर आदि में कराने के लिए लालायित देखा जाता है। इसके लिए श्रावक समाज साधुसंघों से अनुनय विनय पूर्वक श्रद्धा से श्रीफल समर्पण आदि के रूप में प्रारम्भिक निवेदन मूलक पुरुषार्थ करता है। पुण्ययोग से यदि उन्हें साधुसंघ के आचार्य की स्वीकृति मिल जाती है तब हर्षोल्लास पूर्वक श्रावक समाज द्वारा ध्वजारोहण, मंगल कलश स्थापना आदि विधिविधान पूर्वक उनके वर्षावास कराने का संकल्प लिया जाता है।

निराकांक्ष, आरम्भ और परिग्रह से रहित, ज्ञानध्यान एवं तप में लीन रहने वाले साधु-सन्तों को तो इससे कोई प्रयोजन होता नहीं है परन्तु श्रावक इन क्रियाओं के माध्यम से साधुसंघ को आश्वस्त करता है कि उनके द्वारा जो साधुसंघ के वर्षावास कराने का संकल्प लिया गया है, वह अवश्य ही निर्विघ्न पूर्ण किया जायेगा। श्रावक तो श्रावक है, वह हमेशा स्वयं को अल्पज्ञ समझकर गुरुओं का मार्गदर्शन का आकांक्षी रहता है

और चाहता है कि गुरु की कृपा उस पर सदैव बरसती रहे। गुरुजन साधुजन भी श्रावक को सम्यक् मार्ग दिखाते है कि कहीं ये कुगुरुओं के चक्कर में दिग्भ्रमित न हो जायें। यही कारण है कि मोक्षमार्गोभिमुख उपदेश देने के साथ आचार्यों ने श्रावकों को विधिविधान पूर्वक कैसे वर्षावास कराया जाये, इसका भी प्रतिपादन किया है।

अपने विशाल संघ सहित, राष्ट्रसन्त, उपसर्ग विजेता, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, विद्यावारिधि,गणाचार्य, परमपूज्य 108 आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज ने औद्योगिक नगरी गाजियाबाद के श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, कविनगर के अपने वर्षायोग की अवधि में यह अनुभव किया कि श्रावकों को वर्षायोग स्थापना से लेकर वर्षायोग निष्ठापन तक की समस्त क्रियाओं से भिज्ञ होना नितान्त आवश्यक है, जिससे वे साधुओं की तपश्चर्या और श्रुताराधना में सहायक सिद्ध हो सकें और अपने कर्तव्यों के प्रति भी सतत जागरूक बने रहें। इस पवित्र भावना को दृष्टि में रखकर आचार्य श्री ने **'वर्षायोग प्राचीन जैन श्रमण परम्परा'** नामक सारगर्भित एक लघु पुस्तिका का सृजन कर अपने विचारों को मूर्त रूप दिया है। आचार्यश्री के द्वारा इस पुस्तिका में वर्षायोग या वर्षावास का शाब्दिक अर्थ, उसका स्वरूप एवं प्रकार, श्रमण के भेद, वर्षायोग करने योग्य स्थान, वर्षायोग में श्रावकों के कर्तव्य, वर्षायोग के कारण, वर्षायोग में उत्पन्न परिस्थितियां और उसका निवारण, वर्षायोग की विधि, मंगल कलश स्थापना एवं वर्षायोग निष्ठापन विधि प्रभृति पर अनेक शास्त्रों के सन्दर्भ प्रस्तुत कर प्रामाणिक एवं विद्वत्तपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई गई है। इसके अतिरिक्त आचार्य श्री की लेखनी से प्रसूत अनेक ग्रन्थ और विजयोदया एवं रत्नत्रयवर्धिनी टीकाएं उनके अगाध पाण्डित्य की परिचायक हैं। ज्ञान, ध्यान और तप की सरिता रूपी त्रिवेणी की अजस्र धारा का साक्षात्कार उनके चरणों में बैठकर ही प्राप्त हो सकता है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि उनके द्वारा सृजित वर्षायोग विषयक यह लघु पुस्तिका श्रमण-श्रमणियों विधानाचार्यों और श्रावकों के लिए अत्यधिक उपादेय है।

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन, सेवा निवृत्त प्राचार्य,

द्वितीय-ए-78, नेहरु नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

मोबा. 09810792587

राजा श्रीनंदन ने दीक्षा ले केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया। उनके ही गृहस्थ अवस्था के सात पुत्र दीक्षा ले सप्त ऋषि हुए। उनके क्रमशः सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्री निचय सर्वसुन्दर, जयवान, विनय लालस, जयमित्र नाम थे। ये प्रीतंकर केवली के शिष्य थे। वे वर्षाकाल में अयोध्या नगरी में अर्हदत्त सेठ के घर पहुँचे, उन्हें देख सेठ ने विचार किया

अर्हदत्तश्च सम्प्राप्तश्चिन्ता मेतामसम्भ्रमः।

वर्षाकालः चेदृक्षः कचेदं मुनि चेष्टितम्॥ प.पु.पर्व 92 श्लोक18।

अर्थात् उन मुनियों को देखकर सम्भ्रम से रहित अर्हदत्त सेठ इस प्रकार विचार करने लगा कि यह ऐसा वर्षाकाल कहाँ और यह मुनियों की (आगमन/विहार) की चेष्टा कहाँ (कैसे) किन्तु बाद में

चारण श्रमणान्ज्ञात्वा मुनीस्ते मुनयः पुनः।

स्वंनिदनादिना युक्तः साधुचित मुपागतीः॥ प.पु.पर्व 92 श्लोक. 27

जब वे आकाशमार्ग से उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धि के धारक जानकर (धुतिभट्टारक के शिष्य) वे सब अपनी आत्म निंदा आदिकर निर्मल हृदय को प्राप्त हुए।

वर्षायोग-प्राचीन जैन श्रमण परम्परा

"वर्षायोग" वीतरागी श्रमणों की अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। जो आज तक अखण्ड रूप से प्रवाहमान है। यदि इसे हम प्राग ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो शाश्वत परम्परा है।

"वर्षायोग" शब्द की निष्पत्ति यह वर्षा+योग इन दो शब्दों से निष्पन्न एक शब्द है यदि हम दोनों शब्दों की संस्कृत व्याकरण से पृथक्-पृथक् व्याख्या करें तो वह इस प्रकार होगी। **वर्षा**-यह शब्द वृष् धातु में अच् प्रत्यय तथा टाप् प्रत्यय लगने से वर्षः शब्द सिद्ध होता है। अथवा वृष धातु में घञ् प्रत्यय लगने से वर्षः शब्द सिद्ध होता है। वर्षा शब्द का सामान्य अर्थ है "बरसना। जलवर्षा वर्षात् आमतौर पर श्रावण और भाद्रपद में प्रचुर रूप में होती है इस कारण से उक्त दोनों महीनों की एक वर्षाऋतु मानी जाती है। इस ऋतु में वर्षात् के कारण एकेन्द्रिय हरित दूर्वा घास आदि हो जाते हैं तथा अनेक छोटे-बड़े कीट-पतंगे आदि तथा सीलन के कारण असंख्यात व अनंत सूक्ष्म जीव भी उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि बहुत कुछ ऐसे होते हैं जो आँखों से नहीं दिखते हैं। इनकी विराधना (हिंसा) होती है। अतः अहिंसा धर्म के पालक साधुजन योग (एक स्थान पर ठहरना) धारण करते हैं।

योग शब्द- अनेक अर्थों में प्रयुक्त शब्द है यथा 'योग' शब्द छत्र प्रत्य लगने से निष्पन्न है तथ उसका प्रयोग तीन गणों में पाया जाता है

(1) युज समाधौ धातु दिवादिगणीय (आत्मने पदी)

(2) युजिर योगे धातु समादिगणीय (उभय पदी)

(3) युज संयमने धातु चुरादिगणीय (परस्मै पदी)

योग शब्द के विभिन्न अर्थ जैन दर्शन में 'योग' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में दृष्टिगोचर होता है। प्रथम

(I) कायवाङ्मनः कर्मयोगः।

(त. सू. 6/1)

अर्थात् शरीर, वचन और मन के कर्म-क्रिया को योग कहा गया है। अर्थात् प्रथम अर्थ में योग का अर्थ आत्मा के प्रदेशों का परिस्पदन है दूसरा अर्थ समाधि ध्यान आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(II) विवरीयाभिणिवेशं, परिचत्ताजोण्ह कहिय तच्चेषु।
जो जुंजदि अप्पाणं णिय भावो सो हवे जोगी।।

(नि.सा.गा. 139)

जो मुनि विपरीताभिनिवेश को त्यागकर जिन कथित आत्मतत्व में अपनी आत्मा को लगाता है, वह योग है। योग का अर्थ ध्यान है।

(III) "योगः समाधिध्यानमित्यनर्थान्तरम्"

(तत्त्वार्थराजवार्तिक 6/12/8)

अर्थात् योग, समाधि तथा ध्यान ये तीनों पर्यायवाची नाम हैं।

योग का अर्थ निर्दोष क्रिया भी है

(III) "निरवद्यस्यक्रियाविशेष्यानुष्ठानं योगः"

(तत्त्वार्थराज.वा. 6/12/8)

निरवद्य क्रिया विशेष के अनुष्ठान को योग कहते हैं। योग का अर्थ सम्यक् प्रणिधान भी है।

(IV) योगः समाधि सम्यक्-प्रणिधानमित्यर्थः।

(सर्वार्थसिद्धि 6/12)

योग, समाधि तथा सम्यक् प्रणिधान ये सब एकार्थवाची शब्द हैं।

(V) **"चित्तवृत्तिनिरोधः योगः"** = चित्तवृत्ति को रोकना योग है।

(V) **"संख्यासंकलनं योगः"** = संख्याओं का जोड़ योग है

(V) **"अलभ्यलाभो योगः"** = अलभ्य की प्राप्ति योग है

(V) **मिश्रणं योगः"** = मिश्रण को भी योग कहते हैं।

इत्यादि प्रकार से योग के कई अर्थ हैं। सम्प्रति यहाँ योग शब्द से ध्यान, निर्दोष क्रिया एवं साधु तथा श्रावकों के समूह को भी योग कहते हैं।

अनुष्ठानात्मक योग के पात्र

(1) ऋद्धिधारी श्रमण और (2) ऋद्धि रहित श्रमण।

(1) ऋद्धिधारी श्रमणः-चारण ऋद्धिधारी परिहार विशुद्धि संयम, यथाख्यात संयमधारी तथा तीर्थंकर, मुनि, केवली आदि ऋद्धि सम्पन्न मुनियों के द्वारा किसी भी परिस्थिति में भी सूक्ष्म भी जीवों की हिंसा नहीं होती है। अतः उन्हें वर्षायोग करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

उपेक्षा संयमिनां न पुस्तककमण्डल प्रभृतयः अतस्ते परम जिनमुनयः एकान्ततो निस्पृद्धाः अतएव वाह्योपकरण निमुक्ता।

(वि.सा./ता.व्र./64)

उपेक्षा संयमियों की पुस्तक, कमण्डल, आदि नहीं होते हैं, वे परम जिन मुनि एकान्त में निस्पृह होते हैं इसलिये वे बाह्य उपकरण रहित होते हैं। इसलिये ऐसे मुनिराजों को वर्षायोग करने की अनिवार्यता नहीं है।

(2) ऋद्धि रहित श्रमणः-ऋद्धि रहित श्रमण भी 2 प्रकार के होते हैं

(1) उत्तम मध्यम संहनन धारी (2) जघन्य संहनन धारी

ये दोनों संहननधारी वर्षायोग धारण करते हैं।

उत्तम-मध्यम संहनन युक्त श्रमण-ये श्रमण प्रायः उत्कृष्टरूप से योग धारण करते हैं।

अनुष्ठानात्मक योग के प्रकार-योग के तीन भेद हैं

"आदावण, रुक्खमूल, अब्भोवास ठाण"

(योगभक्ति अंचलिका)

अर्थात् आतपन, रुक्खमूल और अब्भोवास ठाण ये तीन प्रकार के योग होते हैं। इसमें यहाँ रुक्खमूल योग प्रयोजनीय है। यह योग कब धारण किया जाता है, यह कहते हैं

1. **वृक्षमूलयोग** वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे ध्यान लगाना वृक्षमूलयोग कहलाता है। (जै. सि. को. 3/380)

2. **आतपनयोग** ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के शिखर पर सूर्य के सम्मुख खड़ा होना आतापन योग है। (जै. सि. को. 2/47)

3. **शीतयोग** शीतऋतु में चौराहे पर नदी-किनारे ध्यान लगाना शीत योग है। (जै. सि. को. 2/47)

या

अभ्रावकाशयोग शीतऋतु में बाहर खुले आकाश में सोना अभ्रावकाश योग है। (जै. सि. को. 2/47)

4. **"वरिसायाले रुक्खमूल"** (लघु योगिभक्ति गाथा 3)

अर्थात् वर्षाकाल में रुक्खमूलयोग धारण किया जाता है।

वर्षाकाल में रुक्खमूलयोग धारण करने वाले साधकों को "रुक्खमूली" कहा जाता है

और भी कहा है

"प्रावृटकाले सविद्युत्प्रपतितसलिलेवृक्षमूलाधिवासाः,"

(प्राकृतयोगिभक्ति श्लोक नं. 12)

अर्थात् वर्षाकाल में बिजली से युक्त घनघोर वर्षा में वृक्ष के मूल (नीचे) निवास करना वृक्षमूलयोग है।

संस्कृत योगिभक्ति में कहा है कि

शिखिगलकज्जलालिमलिनै विबुधाधिपचापचित्रितैः,
भीमरवै-र्विसृष्टचण्डाशनि, शीतलवायुवृष्टिभिः।
गगनतलं विलोक्य जलदैः, स्थगितं सहसा तपोधनाः,
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु, निशासु विशंकमासते।।5।।
जलधाराशरताडिता, न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुखभीरवः, परीषहाराति-घातिनः प्रवीराः।।6।।

(संस्कृत योगिभक्ति 5-6)

अर्थात् वर्षा ऋतु में मयूर के कण्ठ के समान नीले तथा काजल एवं भ्रमर के वर्णवत् काले बादल इन्द्रधनुष तथा भयंकर गर्जना करने वाले प्रचण्ड वज्र शीतल हवा एवं जल की वर्षा करने वाले बादलों से आच्छादित आकाश तल को देखकर उत्तम संहननधारी तपस्वी श्रमण मुनिगण शीघ्र ही भयरहित हो विषम (भयानक) रात्रियों में पुनरपि वृक्षों के नीचे विराजते हैं। वे जल की अखण्ड धारा रूपी बाणों से प्रताड़ित होकर भी संसार भीरु परिषह रूपी शत्रुओं के घातक वीर नरसिंह मुनिराज कभी चारित्र से विचलित नहीं होते हैं।

"वर्षाकालातिदु:खैरपि न कम्पते।।"

(ज्ञानार्णव 41/7)

अर्थात् वर्षाकाल आदि के दु:खों से वे योगी कम्पायमान नहीं होते।

वर्षायोग के अतिचार

भगवती आराधना गाथा 487 की टीका में काय-क्लेश तप के अन्तर्गत "वर्षायोग" के भी अतिचारों को निम्न प्रकार से गिनाया गया है यथा

वृक्षस्य मूलमुगतस्यापि हस्तेन पादेन, शरीरेण वाप्कायानां पीड़ा कथं? शरीराबलग्नजलकण प्रमार्जनं हस्तेन पादेन वा शिला-फलकादिगतोदकापनयनं मृत्तिकार्द्रायां भूमौ शयनं। निम्नेनजलप्रवाहा-

गमर्न देशे वा अवस्थानम्। अवग्राहे वर्षापातः कदास्यादिति चिन्ता। बर्षतिदेवे कदास्योपरमः स्यादिति वा। छत्रकटकादिधारणं वर्षा निवारणायेत्यादिकः।

अर्थात्-(1) वृक्ष के मूल में (नीचे) जाकर हाथ, पैर अथवा शरीर से जलकायिक जीवों को पीड़ा देना।

(2) शरीर में लगे जल के कणों (बूँदों) को हाथ वगैरह से पोंछना, हाथ या पैर से शिला तल आदि पर पड़े जल को दूर करना।

(3) कोमल, गीली भूमि पर सोना।

(4) जल के बहने के निचले प्रदेशों में ठहरना, निश्चित स्थान पर रहते हुये "कब वर्षा होगी" ऐसी चिंता करना अथवा वर्षा होने पर "कब वर्षा रुकेगी।" ऐसी चिंता करना।

(5) वर्षा से बचने के लिये छाता आदि धारण करना ये 'वर्षायोग' के अतिचार हैं।

बलवीरियमासेज्जय खेत्तेकाले शरीर संहड़णं।
काओसग्गं कुज्जी इमे दु दोसे परिहरंतो।।667।।

(मू.आ.)

अर्थात् बल और आत्मशक्ति का आश्रय लेकर क्षेत्र, काल और शारीरिक संहनन को ध्यान में रखते हुए ही सर्वदोषों को त्यागकर कायोत्सर्ग करें। वर्षायोग धारण करे।

वसतिका-साधुओं के ठहरने योग्य स्थान को वसतिका कहते हैं।

यथा

(I) **सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।**
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भोमवणे अहव वसिते वा।।42।।

(बो.पा.गा. 42)

सूनाघर, वृक्ष का मूल (कोटर) उद्यान, श्मसान, गिरि गुफा, गिरि शिखर,

भयानक वन अथवा वसतिका में दीक्षित मुनि रहते हैं।

(II) **गिरिगुहा - कंदर - पब्भार - सुसाण-सुण्णहरारामुज्जाणाओ पदेसा विवित्तं णाम।**

(ध.पु. 13/5,4,26/58/8)

गिरिगुफा, कन्दरा, पब्भार (शिक्षा गृह-स्कूल) श्मसान, शून्यघर, आरामगृह (विश्रामगृह, धर्मशाला, प्रतीक्षालय) उद्यान-आदि प्रदेश विविक्त कहलाते हैं।

(III) **आंगतुगारदेवकुले। अकदप्पब्भारारामघरादीणि य विचित्ताइं॥**

(भ.आ. 231, 639)

देवमंदिर, विश्रामगृह/प्रतीक्षालय/धर्मशाला, पब्भार (शिक्षागृह-स्कूल) अकृत्रिम गृह, क्रीड़ार्थ आने-जाने वालों के लिये बनाये गये घर ये सब विविक्त वसतिकायें हैं।

(III)**कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा अनात्मोद्देशनिर्व्वर्तिता निरारम्भाः सेव्याः।**

(रा.व. 9/6/16/597/36)

शून्य मकान या छोड़े हुये मकान में रहना चाहिये, जो उनके उद्देश्य से नहीं बनाये गये हों और न जिनमें उनके लिये कोई आरंभ ही किया गया हो।

(V)

सुहणिक्खवणपवेसणधणाओ अवियडअणंधयाराओ।
दो तिण्णि वि वसधीओ घेत्तव्वाओ विसालाओ॥636॥

घणकुड्डे सकवाडे गामबहिं बालबुढ्ठगण जोग्गे।
उज्जाणघरे गिरिकंदरे गुहाए व सुण्णहरे॥637॥

(भ.आ.गा.636-637)

जिसमें प्रवेश करना या जिसमें से निकलना सुखपूर्वक हो सके। जिसका द्वार ढ़का हो (कपाट सहित हो) जिसमें पर्याप्त प्रकाश हो। जिसके किवाड़ या दीवारें मजबूत हों, जो ग्राम के बाहर हो, जहाँ बाल-वृद्ध या चार प्रकार के गण (चतुर्विध संघ) आसानी से आ जा सकते हों।

(VI)

जत्थ ण विसोत्तिग अत्थि दु सद्दरसरुवगंधफासेहिं।
सज्झायज्झाणवाघादो वा वसधी विवित्ता सा।।230।।

पंचिंदियप्पयारो मणसंखोभकरणो जहिं णत्थि।
चिट्ठदि तहिं तिगुत्तो ज्झाणेण सुहप्पवत्तेण।।634।।

(भ.आ.गा. 230-634)

जहाँ अमनोहर या मनोहर स्पर्श, रस, गंध रूप आदि शब्दों द्वारा अशुभ परिणाम नहीं होते हैं। जहाँ स्वाध्याय व ध्यान में विघ्न नहीं होता हो। जहाँ ठहरने से मुनियों की इन्द्रियाँ विषयों की तरफ नहीं दौड़ती हों, मन की एकाग्रता नष्ट नहीं होती हो तथा ध्यान निर्विघ्न हो, ऐसी वसतिका में साधुजन ठहरते हैं।

(VII)

त्थी-पसु-संढयादीहि ज्झाणज्झेय विग्घकारणेहि वज्जिय...पदेसा विवित्तं णाम।

(ध.पु. 13/5, 4, 26/58/8)

ध्यान और ध्येय में विघ्न के कारणभूत स्त्री, पशु और नपुंसक आदि से रहित प्रदेश विविक्त कहलाता है।

किस स्थान पर न रहें

(I)

जत्थ कसायुप्पत्ति रभत्तिंदियदार इत्थि जण बहुलं।
दुक्खमुवसग्गबहुलं भिक्खू खेत्तं विवज्झेऊ।।

(भू.भा.गा. 949)

जिस क्षेत्र में कषाय की उत्पत्ति हो, स्त्री आदि बहुत जनों का संसर्ग हो, आदर का अभाव हो, मूर्खता हो, इन्द्रिय विषयों की अधिकता हो तथा क्लेश व उपसर्ग हो। ऐसे क्षेत्र को मुनि अवश्य छोड़ दें।

(II)

गंधव्वणट्टजट्टस्सचक्कजंतग्गि कम्मफरुसे य।
वत्तिजया पाऽहि पाऽहिडोबणंडरायमग्गे॥633॥

(III)

चारण कोट्टगकल्लालकरकचे पुप्फदय समीपे च।
एवं विध वसधीए होज्ज समाधीए बाधादो॥634॥

(भ.आ. 633-634)

गंधर्व, गायन, नृत्य, गज, अश्व आदि शाला के तेली, कुम्हार, धोबी, नर, भाण्ड, शिल्पी आदि के घरों के निकट तथा राजमार्ग, बगीचे, जलाशय के निकट वसति होने से ध्यान आदि में विघ्न आते हैं।

(IV)

तेरिक्खी माणुस्सिय सविकारिणि-देविगेहिसंसत्ते।
वज्जेंति अप्पमत्ता णिलए सयाणासणट्ठाणे॥357॥

(भू.आ.गा. 357)

गाय आदि तिर्यञ्चनी, कुशील स्त्री, भवनवासनी व व्यंतरणी देवी, असंयमी गृहस्थ इनके रहने के निवास में यत्नाचारी मुनि शयन, बैठक व वहाँ खड़े भी न हो।

निर्दोष वसतिकाः

उग्गमउप्पादण एषणा विसुद्धाए अकिरियाए हु।
वसइ असंसत्ताए णिप्पाहुडियाए सेज्जाए॥635॥

(भ.आ. 635)

जो उद्गम, उत्पादन तथा एषणा दोषों से रहित है। जिसमें जन्तुओं का वास न हो अथवा बाहर से आकर (यात्रीगण) जहाँ वास न करते हों, जो संस्कार (तत्काल लीपना, पोतना सजाना आदि) संस्कार से रहित हो ऐसी वसतिका में साधुगण निवास करते हैं।

वसतिका के 46 दोषः

16 उद्गम, 16 उत्पादन, 10 एषणा, 4 धूम्र ये 46 दोष हैं।

16 उद्गम दोष

1. **अब्भोब्भव दोष**-गृहस्थ द्वारा अपने घर में यह कोठरी संयतो के लिए होगी ऐसा विचारकर बनाई गई वसतिका।
2. **पूतिक दोष**-अपने लिए तथा संयतों के लिए लाये गए बहुत काष्ठादिक का मिश्रण कर बनाई गई वसतिका।
3. **मिश्र दोष**-पाखंडी साधु/निजगृह के लिए बनायी जाने वाली वसतिका में संयतों के उद्देश्य से मिश्रण कर बनाई वसतिका।
4. **स्थापित दोष**-गृहस्थ द्वारा बनाई गई निजवसतिका में यह गृह संयतो के लिए हो एसा संकल्प करना।
5. **पाहुडिग दोष**-संयतों के आगमन पर ही वसतिका स्वच्छ करेंगे ऐसा मन में संकल्प करना।
6. **बलि दोष**-यक्ष, नाग, माता, कुलदेवता के निमित्त निर्मित कर वसतिका का अवशिष्ट रहा स्थान मुनि को देना।
7. **प्रादुष्कृत दोष**-मुनि प्रवेश के पूर्व ही संस्कारित जो वसतिका है।
8. **प्रदुकार दोष**-विपुल अंधकार वाली वसतिका में प्रकाश के लिए भित्ति में छेद करना, काष्ठ के फलकादि को निकालना।
9. **क्रीत दोष**-गाय आदि सचित्त तथा गुड़, घृत आदि ऐसे अचित्त पदार्थ देकर खरीदा गया घर द्रव्यक्रीत तथा विद्या मंत्रादि देकर खरीदा गया घर भावक्रीत दोष है।

10. **पामिच्छ दोष**–अल्प ऋण करके और उसका सूद देकर या न देकर संयतों के लिए बनाई गई वसतिका।

11. **परियट्ट दोष**–मेरे घर में आप ठहरो तथा अपना घर मुनियों के लिए दो, ऐसा कहकर ली गई वसतिका।

12. **अभिघट दोष**–अपने घर को भीत के लिए जो स्तम्भादि थे वह संयतों के लिए लाना।

13. **उद्भिन्न दोष**–ईंट, मिटटी के पिण्ड, काँटों की वाडी अथवा किवाड़ पाषाणों से ढके घर को खुला करके मुनियों को देना।

14. **मालारोह दोष**–नसैनी से चढ़कर मुनियों को जो दूसरी अथवा तीसरी मंजिल रहने के लिए देना।

15. **अच्छेज्ज दोष**–राजादि का भय दिखाकर दूसरों के गृहादि मुनियों को देना।

16. **अनिसृष्ट दोष**–जो वसतिका बालक और परवश ऐसे स्वामी से दी जाती है।

16 उत्पादन दोष

1. **धात्री दोष**–बालकों के लालन–पालन की शिक्षा देकर वसतिका प्राप्त करना।

2. **दूतकर्म दोष**–दूरस्थ ग्रामादि में स्थित बन्धुजनों की वार्ता निवेदित कर वसतिका प्राप्त करना।

3. **निमित्त दोष**–अंग, स्वर आदि 8 प्रकार के निमित्तशास्त्र का उपदेश देकर वसतिका प्राप्त करना।

4. **आजीव दोष**–अपनी जाति, कुल आदि का माहात्म्य वर्णन कर वसतिका प्राप्त करना।

5. **वणिग दोष**–श्रावक के अनुकूल वचन बोलकर वसतिका लेना।

6. **चिकित्सा दोष**–8 प्रकार की चिकित्सा करके वसतिका लेना।

7-10. **क्रोधादि चतुष्टय दोष**-क्रोध, मान, माया, लोभ दिखाकर वसतिका प्राप्त करना।

11. **पूर्वस्तुति दोष**-प्रशंसारूप वचनों द्वारा पूर्व स्तुति करके श्रावक से वसतिका प्राप्त करना।

12. **पश्चात्स्तुति दोष**-पुनः वसतिका प्राप्त हो इस उद्देश्य से जाते समय श्रावक की स्तुति करना।

13. **विद्या दोष**-विद्या, (सिद्ध साधित) प्रयोग से गृहस्थ को वशकर वसतिका लेना।

14. **मंत्र दोष**-अंग आदि मंत्रों का उपदेश देकर वसतिका लेना।

15. **चूर्ण दोष**-चूर्णादिक का उपदेश देकर वसतिका लेना।

16. **मूलकर्म दोष**-भिन्नजाति की कन्या से संबंध मिलाकर अथवा विरक्तों को अनुरक्त करने का उपाय कर वसतिका लेना।

दस एषणा संबंधी दोष तथा 4 धूमदि दोष

1. **शंकित दोष**-वसतिका योग्य हैं या नहीं, ऐसी शंका करके वसतिका लेना।

2. **भ्रक्षित दोष**-तत्काल लीपी गई या जलप्रवाह युक्त या पानी युक्त वसतिका।

3. **निक्षिप्त दोष**-सचित्त, जमीन, पानी, हरित वनस्पति, बीज या त्रसजीव आदि के ऊपर पीठ, फलक, आदि युक्त वसतिका।

4. **पिहित दोष**-हरित वनस्पति, कांटे, सचित्त मृत्तिका आदि का अच्छादन हटा दी गई वसतिका।

5. **साधारण दोष**-लकड़ी, वस्त्रादि को घसीटता हुआ आगे जाने वाले पुरुष द्वारा दिखाई गई वसतिका।

6. **दायक दोष**-जिसको मरणाशौच, जननाशौच है, जो मत्त, रोगी, नपुंसक, पिशाचग्रस्त, नग्न है ऐसे गृहस्थ द्वारा दी गई।

7. **उन्मिश्र दोष**-जो स्थावर व त्रस जीवों से युक्त है।

8. **प्रमाणतिरेक दोष**-मुनियों को जितने प्रमाण भूमि ग्रहण हो, उससे अधिक ग्रहण करना।

9. **धूम दोष**-ठण्डी, ग्रीष्म आदि बाधायुक्त वसतिका की निंदा करते हुए उसमें रहना।

10. **इंगाल दोष**-ठण्डी, गर्मी आदि बाधा रहित अनुकूल वसतिका में रागभाव करके उसमें रहना।

11. **अधाकर्म दोष**-झाड़ तोड़कर लाना, ईंटें पकवाना, जमीन खोदना आदि क्रियाओं से षट्काय जीवों की विराधना करके स्वयं या दूसरों से बनाई गई वसतिका।

12. **उद्देशिक दोष**-दीन, अनाथ, कृपण, सर्वधर्म के साधु, जैनधर्म के साधु आवेंगे उन सबके निमित्त से बनाई गई वसतिका।

(भ.आ. गा. 230 टीका)

अनत्रऋद्धि श्रमणों का वर्षायोग

सम्प्रति हीनसंहनन के कारण साधुजन संतशाला आदि में चार माह तक एक स्थान पर ठहरकर यथाशक्ति तपत्याग के साथ धर्मध्यान करते हैं। अतः इसे भी रुढ़ीवशात् वर्षायोग अथवा वर्षावास कहते हैं। योग का दूसरा अर्थ है जोड़ अर्थात् वर्षाकाल में साधु और श्रावक का चारमाह तक लगातार एक स्थान पर परस्पर धर्मध्यान का योग होता है अर्थात् सुधी श्रावकों से साधुओं का तथा साधुओं से श्रावकों के स्वाध्याय, प्रवचनलाभ आदि का योग होने से "वर्षायोग" यह अन्वयार्थक संज्ञा सिद्ध होती है।

वर्षायोग का प्राचीन इतिहास आचार्यों का "आचारत्व" मूलगुण

भगवती आराधना ग्रंथ में आचार्य के छत्तीस मूलगुणों में एक गुण "आचारत्व" है। जिसका प्रकारान्तर से वर्णन करते हुए मूलाचार में कहा है कि

दसविह ठिदिकप्पे वा हवेज्जंतो सुद्धिदो सयायरिओ।
आयारत्वं खु एसो पवयणमादासु आउत्तो।।422।।

अर्थात् जो आचार्य सदा दस प्रकार के स्थितिकल्पों में सम्यक् रूप से स्थिर हैं वह आचारवान है। वे आचार्य पाँच समिति तथा तीन गुप्ति रूप आठ प्रकार की प्रवचन माता में सदा तत्पर रहते हैं।

आचारत्व के दस स्थितिकल्प

भगवती आराधना ग्रंथ की गाथा 423 में, मूलाचार के अध्याय 9 समयसार अधिकार की गाथा 911 में, तथा सागारधर्मामृत के अध्याय 9 नैत्यिक क्रियाविधान नामक नवमें अधिकार की गाथा 80-81 इन तीनों गंथों में लगभग समानरूप से प्राप्त होते हैं।

दस स्थितिकल्प निम्न प्रकार से हैं

आचेलक्कुद्देसियसेज्जाहररायपिडं किरिकम्मे।
वदजेट्ठपडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो।।

(भ.आ.गा. 423)

लगभग यही गाथा मूलाचार अ. 9 गाथा 911 की है

अच्चेलक्कुद्देसिय, सज्जाहर रायपिडं किदियम्मं।
वद जेट्ठं पडिक्कमणं, मासं पज्जोससण कप्पो।।

(मू. आ. अ. 9 गा. 911)

आचेलक्योद्देसिक, शय्याधर राजकीय पिण्डौज्झाः।
कृतिकर्म वृतारोपण योग्यत्वं ज्येष्ठता प्रतिक्रमणम्।।
वासैक वासिता स्थिति, कल्पोयोगश्च वार्षिकोदशमः।
तन्निष्ठं पृथुकीर्तिः दीपकं निर्यापको विशोधयति।।

(अन. धर्मा. अ. 9 गा. 80.8)

(1) आचेलक्य (2) औद्देषिक त्याग (3) शय्याघर त्याग (4) राजपिंड त्याग (5) कृतिकर्म (6) व्रत (7) ज्येष्ठता (8) प्रतिक्रमण (9) मास

(10) पयुर्षणा।

अनगार धर्मामृत में नवमें स्थितिकल्प को "मासकवास" तथा दसवें स्थितिकल्प को "वार्षिक योग" कहा है।

वर्षायोग और चातुर्मास भगवती आराधना विजयोदया टीका गाथा 423 में खुलासा करते हुए कहा है कि

"पज्जोसमणकल्पो नामदशमः। वर्षाकालस्य चतुर्षुमासेषु एकत्रैवानस्थाने भमण त्यागः। स्थावर जंगम जीवाकुला हि तथा क्षितिः। तदा भमणे महानासंयमः वृष्टयाशीतवातपालने च आत्मविराधना।

अर्थात् पज्जोश्रमण नामक दसवाँ कल्प है इसमें चतुर्विधसंघ वर्षाकाल में चार माह (श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक) तक भ्रमण त्यागकर एक स्थान पर निवास करते हैं। उस काल में पृथिवी स्थावर और जंगम (त्रस) जीवों से व्याप्त रहती है ऐसे समय में भ्रमण करने से महान असंयम होता है। तथा वर्षा और शीतवायु के बहने से आत्मा की विराधना होती है अतः चारमाह तक एक स्थान पर रहने से इसे वर्षायोग अथवा चातुर्मास भी कहते हैं।

(गाथा 911 अ.9)

मूलाचार की आचारवृत्ति टीका में मास नामक नवमें स्थितिकल्प को निम्न प्रकार से कहा है-यथा

मासो योगग्रहणात्प्राङ्गामासमात्रमवस्थाने कृत्वा वर्षाकाले योगोग्रह्यस्तथा योगसमाप्यमासमात्रमवस्थानं कर्त्तव्याम्। लोकस्थिति-ज्ञापनार्थमहिंसादिव्रतपरिपालनार्थं च योगात्प्राङ्गमासमात्रावस्थानस्य पश्चाच्चमासमात्रमवस्थानं श्रावकलोकादि संक्लेशपरिहरणायाथवा ऋतौं ऋतौं मासमासमात्रं स्थातव्यं मासमात्रं च विहरणं कर्तव्यमिति। मासः श्रमणकल्पोऽथवा वर्षाकालेयोगग्रहणं चतुर्षु-चतुर्षु मासेषु नन्दीश्वकरणं च मासश्रमणकल्पः।

अर्थात् वर्षायोग ग्रहण के एकमास पहले से रहकर तथा वर्षाकाल में वर्षायोग ग्रहण करना तथा वर्षायोग को समाप्त करके पुनः एक माह तक

अवस्थान करना चाहिए।

लोकस्थिति को बतलाने के लिए और अहिंसादि व्रतों का पालन करने के लिए वर्षायोग के पहले एकमाह रहने का और अनन्तर भी एकमाह तक रहने का विधान है सो यह श्रावकादि को संक्लेशता का परिहार करने के लिए है। अथवा ऋतु-ऋतु में एक-एक माह तक (एक-2) स्थान पर रहना चाहिए तथा एक-2 माह विहार करना चाहिए। ऐसा यह मासनामक श्रमणकल्प है। अथवा वर्षाकाल में वर्षायोग ग्रहण करना और चार-2 महिनों में नंदीश्वर करना सो यह मास श्रमणकल्प है।

यही बात भगवती आराधना के नवमें मासनामक स्थितिकल्प में भी कही है (भ. आ. वि. टीका गा. 423) यथा-

ऋतुषु षट्सु एकैकमेव मासमेकत्र वसति...विरहति इत्यये नवमः स्थितिकल्पः। एकत्र चिरकालावस्थाने नित्यमुद्गमदोषं च न परिहर्तुं क्षमः। क्षेत्रप्रतिबद्धता, सातगुरुता, अलसता, सौकुमार्यभावना ज्ञातभिक्षाग्राह्यतां च दोषाः।

अर्थात् छहऋतुओं में क्रमशः एक-2 महीना ही एक स्थान पर रहना और अन्य समय में विहार करना नवम स्थितिकल्प है। तथा इसका कारण बताते हुए कहा है कि एकस्थान में बहुत समय तक रहने से उद्गमदोष लगता है। उक्त स्थान से मोहबन्ध, सुखशीलता, आलसीपना, सुकुमारता की भावना, तथा ज्ञात भिक्षा ग्राह्यता दोष लगते हैं।

पण्डित आशाधर जी ने भी यही कहा है कि

"त्रिंशदहोरात्रमेकत्र ग्रामादौं वसति तद्भवस्तद्व्रते (अ.9 श्लो. 80-81)

अर्थात् छहः ऋतुओं में एक स्थान पर एक-एक ही माह रहना अन्य समय विहार करना नवमें स्थिति कल्प है।

वर्षायोग की अवधि

1 भगवती आराधना की वि.टीका गा. 423 में कहा है

"विंशत्यधिकं दिवसशतं एकावावस्थानमित्युत्सर्गः"

अर्थात् सामान्यतः आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी में वर्षायोग की स्थापना करके कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को वर्षायोग की निष्ठापना करते है अतः कुल 4 माह यानि 120 दिन तक वर्षायोग की उत्सर्गविधि है। तथा

"कारणापेक्षया तु हीनाधिकं वावस्थानं"

अर्थात् किसी अपरिहार्य कारण के उपस्थित होने पर इस अवधि में हीनाधिक अवस्थान भी हो सकता है।

वर्षायोग की उत्कृष्ट अवधि का कारण

"संयतानां आषाढ़ शुक्लदशम्यां स्थितानां उपरिष्टाच्च कार्तिकपौर्णमास्या-स्त्रिंशदिवसावस्थानं।"

अर्थात् आषाढ़ शुक्ला दशमी के वर्षायोग की स्थापना कर कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के बाद तीस दिन तक अर्थात् मागसिर शुक्ला पूर्णिमा तक यानि 5 माह 5 दिन तक अधिक से अधिक ठहर सकते हैं।

उत्कृष्ट अवधि का कारण

"वृष्टिबहुलतां, श्रुतग्रहणं, शक्त्यभाव, वैय्यावृत्यकरणं, प्रयोजनमुद्दिश्य अवस्थानमेकत्रेति उत्कृष्टः कालः"

अर्थात् वर्षायोग में अधिक रुकने का कारण वर्षा की अधिकता, शास्त्रपाठन, शक्ति का अभाव, वैय्यावृत्ति है।

वर्षायोग की जघन्य अवधि का कारण

(एतद्विषये द्विप्रमाणं प्राप्नोति) अर्थात् (इस विषय में दो प्रमाण प्राप्त है)

1. (अनगार धर्मामृत गा. 80-81 अ. 9) की टीका में कहा है

"पूर्णमास्यामाषाढ़यमतिक्रन्तायां प्रतिपदादिषु दिनेषु यति यावच्च्वत्वारो दिवसः। एतदपेक्ष्याहीनताकालस्य"

1. आषाढ़ी पूर्णिमा बीतने पर प्रतिपदादि चार दिन तक जाकर श्रावणकृष्णपंचमी तक वर्षायोग की स्थापना नियम से कर लेनी चाहिए।

2. दूसरा प्रमाण–भगवती आराधना गा. 423 टीका में कहा है

“पौर्णमास्यामाषाढ़्यामतिक्रान्तायां प्रतिपदादिषु दिनेषु याति। यावच्च व्यक्त्वा विंशतिदिवसा एतदपेक्ष्याहीनताकालस्य”

अर्थात् आषाढ़ की पूर्णमासी बीतने पर प्रतिपदा के दिन देशान्तर गमन करते हैं इस तरह 20 दिन कम भी हो सकते हैं अतः भाव शुक्ला पंचमी भाद्रशुक्ला पंचमी को वर्षायोग की स्थापना कर कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन निष्ठापन करते हैं तो वर्षायोग की जघन्य अवधि 70 दिन की होती है।

जघन्य अवधि का कारण

भगवती आराधना गा. 423 की टीका में कहा गया है

“मार्या, दुर्भिक्षे, ग्रामजनपदचलेन वा गच्छत्नाशनिमित्ते समुपस्थिते देशान्तरं या”।।

अर्थात् यदि महामारी रोग फैल जाए, दुर्भिक्ष पड़े, संघविनाशक निमित्तों के आने पर वे साधक विहार कर देते हैं।

विशेषार्थ श्वेताम्बर परम्परा में भी वर्षायोग की उत्कृष्ट अवधि आषाढ़ी पूर्णिमा से कार्तिकी पूर्णिमा तक चारमाह है। तथा जघन्यकाल भाद्रशुक्ला पंचमी से कार्तिक कृष्णा पूर्णिमा तक कुल 70 दिन माने गये है। पर उपरोक्त दोनों प्रमाणों में से वर्तमान में पं. आशाधर जी का प्रमाण ही दिगम्बर परम्परा में प्रचलित है अर्थात् साधक यदि आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को वर्षायोग स्थापित नहीं कर पाते हैं तो श्रावण वदी पंचमी तक वे नियम से वर्षायोग स्थापित कर लेते हैं जो कि उचित ही है।

उत्कृष्ट मध्यम जघन्य अवधि का खुलासा: वर्षायोग स्थान पर ठहरने की अवधि 3 प्रकार से संभव है।

(I) उत्कृष्ट (II) मध्यम (III) जघन्य

(1) उत्कृष्ट अवधिः आषाढ़ शुक्ला दसमी से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक कुल 135 दिन अर्थात् 4 माह 15 दिन

(I) यदि इसमें भगवती आराधना की विजयोदया टीकानुसार 30 दिन वर्षायोग निष्ठापन के बाद जोड़ दिये जाये तो आषाढ़ शुक्ला दसमी से मगसिर शुक्ला पूर्णिमा तक अर्थात् 135+30 = 165 दिन (5 माह 15 दिन) तक एक स्थान पर रह सकते हैं।

(II) यदि इसमें मूलाचार की अपराजित सूरिकृत टीका के अनुसार 1 माह पूर्व का जोड़ दिया जाये तो वैशाख शुक्ला से मगसिर शुक्ला पूर्णिमा तक 165+30 = 195 दिन अर्थात् 6 माह 15 दिन तक वर्षायोग के स्थान पर ठहर सकते हैं।

(2) मध्यम अवधिः-इस अवधि के 2 विकल्प हैं

(I) आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक अर्थात् 120 दिन (पूरे 4 माह)। यदि इसमें भगवती आराधना टीकानुसार 30 दिन और जोड़ दें, तो प्रथम विकल्प की अपेक्षा 120+30 =150 दिन (5 माह) तक साधक एक स्थान पर ठहर सकेगा। तथा मूलाचार टीकानुसार 120 दिन में वर्षायोग के पूर्व और पश्चात के एक-एक माह और जोड़ दें तो, 120+60 = 180 दिन (पूर्ण 6 माह) होंगे। इतने समय तक साधक एक स्थान में ठहर सकेगा।

(II) आषाढ़ शुक्ला पूनम से कार्तिक कृष्णा अमावस्या तक 105 (3 माह 15 दिन) जो कि वर्तमान में प्रायः सभी संघों में प्रचलित पद्धति है। इसमें भी यदि भगवती आराधना टीकानुसार 30 दिन जोड़ दें तो 105+30 = 135 दिन (4 माह 15 दिन) तक एक स्थान पर रुकने की अवधि होगी और मूलाचार टीकानुसार 105+60 = 165 दिन (5 माह 15 दिन) तक रुकने की अवधि होगी।

(3) जघन्य अवधि-कारण वशात् यदि आषाढ़ शुक्ला चौदस को वर्षायोग स्थापना नहीं कर सके तो श्रावण वदी पंचमी तक स्थापना करना चाहिये। अतः 100 दिन (3 माह 10 दिन) तक वर्षायोग का काल हुआ।

यदि इसमें भी भगवती आराधना टीकानुसार 30 दिन जोड़ दें तो 100+30 = 130 दिन (4 माह 10 दिन) तक एक स्थान पर ठहरने की अवधि होती है अथवा मूलाचार टीकानुसार पूर्वापर के 2 माह और जोड़ दें तो, 100+60 = 160 दिन (5 माह 10 दिन) तक वर्षायोग में ठहरने की अवधि निकलती है।

तात्पर्य यह निकला कि यदि वर्षायोग के पश्चात शीघ्रातिशीघ्र विहार करना चाहिये। पंचमी से कर सकते हैं। तथा यदि विलम्ब से करना हो तो मगसिर शुक्ला पूर्णिमा तक अवश्य विहार करना चाहिये इससे अधिक नहीं रुकना चाहिये।

मंगल गोचर भक्तप्रत्याख्यान चातुर्मास स्थापना के पूर्व दिन अर्थात् (आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी के दिन सर्वसंघ द्वारा गुरु की साक्षी में आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के उपवास हेतु किया जाने वाला अनुष्ठान)

आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी के दिन आहार के बाद गुरु या जिनसाक्षी में दण्डपूर्वक बृहद् सिद्ध, योगि भक्ति पढ़कर अगले दिन का उपवास ग्रहण करें पश्चात् वृहद् आचार्य, शांति एवं समाधिभक्ति पढ़ें।

यथा

लाखा बृहत्सिद्धयोगिस्तुत्या मंगलगोचरे।
प्रत्याख्यानं बृहत्सूरिशान्ति भक्ती प्रयुज्यताम्॥

मंगलगोचर मध्यान्ह वंदना क्रिया

माध्यान्हिक देववंदना (सामायिक) में दण्डक पूर्वक सिद्ध, चैत्य, पंचमहागुरु, शांति एवं समाधि भक्ति पढ़ना चाहिये।

वर्षायोग प्रतिष्ठापन कब0 करें

आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को (श्रावण कृष्णा पंचमी तक जिस दिन वर्षायोग की स्थापना करनी हो उस दिन) प्रातःकालीन बेला में अष्टान्हिक चतुर्दशी की भक्ति करें। दोपहर में संवत्सरिक प्रतिक्रमण करें। यथा– "आषाढ़ान्तसांवत्सरी प्रतिक्रमणं" (अनगार धर्मामृत 8/58)

यदि गुरुपूर्णिमा को वर्षायोग स्थापना करना हो तो केवल अष्टान्हिक भक्ति करें अथवा श्रावण वदी एकम से पंचमी तक जिस किसी दिन वर्षायोग स्थापना करें उस दिन केवल उपवास करें।

शंका:- (i) क्या चतुर्दशी को उपवास कर श्रावणवदी पंचमी तक किसी भी दिन वर्षायोग स्थापना कर सकते हैं?

(ii) अथवा चतुर्दशी के दिन वर्षायोग की स्थापना कर उपवास इसके बाद श्रावण वदी पंचमी तक किया जा सकता है?

(iii) क्या उपवास श्रावणवदी पंचमी के बाद भी किया जा सकता है?

(iv) क्या उपवास करना अनिवार्य है?

समाधान-जिस दिन वर्षायोग स्थापन/निष्ठापन किया जाता है, उस दिन उपवास करना अनिवार्य होता है। वैसे तो वर्षायोग में 12 उपवास करना चाहिये ऐसी आगम की आज्ञा है। यथा

आषाढ़मास संवत्सरिके उपवासद्वादश। (छेदशास्त्राम् 67)
आषाढ़े संवच्छर पडिक्कमणे दिज्जसु बारसउववासा।

(छेदपिंड 115)

फिर गुरु जैसा मार्गदर्शन दें वैसा करें।

शंका-क्या वर्षायोग की स्थापना आषाढ़ शुक्ला दशमी से श्रावण वदी पंचमी के पहले या बाद में भी की जा सकती है।

समाधान-नहीं, उपरोक्त विधि का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

शंका वर्षायोग स्थापना किस बेला (समय) में करनी चाहिये?

समाधान-वर्षायोग की स्थापना पूर्वरात्रि की बेला (सूर्यास्त की बेला) अर्थात् अपराण्हिक बेला में क्रिया प्रारंभकर सूर्यास्त तक चातुर्मास विधि पूर्ण करना चाहिये। यथा

शंका-किन्हीं-किन्हीं संघों में प्रातःकाल या फिर रात्रि में सामायिक के बाद से प्रारंभ की जाती है?

समाधान–आगम की आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं है। प्रात:काल की बेला में कहीं भी वर्षायोग प्रतिष्ठापन का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। तथा सायं सामायिक के बाद भी उचित नहीं है क्योंकि

1. वर्षाऋतु होने से रात्रि में प्रचुर जीवोत्पत्ति होती है अत: उनकी हिंसा होती है।
2. लाईट की आवश्यकता पड़ती है, यदि लाईट चली जाये तो कार्यक्रम में बाधा आती है।
3. पाठ आदि के समय मौन खोलना पड़ता है।
4. सामाजिक लोगों की दृष्टि से विशाल हॉल, पाण्डाल आदि तक आना जाना पड़ता है।
5. रास्ते में अंधेरा भी हो सकता है।
6. भीड़ होने से लोगों या महिलाओं से टकराने की सम्भावना रहती है।
7. पाठ आदि के अलावा आवश्यक कार्य हेतु हूँकार आदि संकेत करना पड़ता है। कोई न समझे तो बोलना भी पड़ सकता है जिससे मौन के नियम टूटते हैं।
8. बात करने से लोग आलोचना करते हैं।
9. नवदीक्षित या वृद्ध साधकों को अन्य दिनों में भी बात करने का उदाहरण बनता है।

अत:अपराण्हिक बेला से लेकर सूर्यास्त तक उपरोक्त वर्षायोग की विधि पूर्ण करना चाहिये। अथवा अपनी वसतिका में ही प्रथम रात्रि में वर्षायोग विधि करनी चाहिये।

वर्षायोग स्थापना कैसे करें

वर्षाकाले योगग्रहणे निष्ठापने च सिद्धयोगपंच चैत्यगुरु भक्त्यः कार्याः चैत्यभक्त्या प्रदक्षिणी कुर्वन सालोचनत्युत्सर्गं चतुसृषु दिक्षु कुर्यात्।

(अनगार धर्मामृत 9/66-67)

आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की पूर्वरात्रि में वर्षायोग प्रतिष्ठापन विधि इस प्रकार करें (सर्वप्रथम दण्डक पूर्वक सिद्ध, योगि भक्ति करके पूर्वादि दिशाओं में खड़े होकर या बैठकर एकान्तिक अर्थात् अपनी वसतिका में जहाँ असंयमी न हो वहाँ खड़े होकर चतुर्दिग वंदना करना चाहिये किन्तु जहाँ असंयमी जनों का समृद्ध हो वहाँ बैठकर दिग्वंदना करनी चाहिये वह क्रमशः चारों दिशाओं में स्वयंभू स्तोत्र के 2-2 तीर्थंकरों की स्तुति एवं लघु चैत्य भक्ति करें। पश्चात् पंचगुरुभक्ति एवं शान्ति भक्ति पूर्वक समाधि भक्ति पढ़ें।

"ध्वजारोहण"

वर्षायोग स्थापना के समय किसी उचित स्थान पर मंदिर जी में या फिर जहाँ मुनिसंघ विराजमान हैं वहाँ अथवा प्रवचन मंडप के सन्मुख-चार माह तक स्थाई रहने वाली ध्वजा स्थापना करें।

आयोजक समिति सर्वप्रथम विद्वान पंडित जी का सम्मान करें।

1. ध्वज बड़ी हो।
2. ध्वज दण्ड भी पांडालादि से संवारा हो।
3. ध्वज पीठ तीन कटनी वाला हो।
4. ध्वजपीठ रंगोली से सजा हो।
5. ध्वजारोहण कर्ता का सम्मान करें।
6. ध्वजारोहण विधि करें।
7. हवा का रुख देखकर ही ध्वजारोहण करें।
8. ध्वजगीत गायें।
9. ध्वज वंदन करें।

मंगल कलश स्थापना

यद्यपि वर्षायोग में मंगल कलश स्थापना का कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता है। फिर भी श्रावकजन निर्विघ्न कार्य की सिद्धि के लिये मंगल

कलश की स्थापना करते हैं।
* कलश मंगल है कहा भी गया है

सिद्धत्थ पुण्णकुंभो वंदणमाला य मंगलं छत्तं।
सेदो वण्णो आदंसणो य कण्णा च जच्चस्सो।।

(धवला 1/1,1/13/281)

* कलश अरहंत स्वरूप है-यथा

पुण्णा मणोरहेहिं य केवलणाणेण चादि संपुण्णा।
अरिहंता इदि लोए सुमंगलं पुण्णकुंभो दु।।

(पंचास्तिकाय ता. वृ. टीका 9)

अर्थात् अरिहन्त जिनेन्द्र देव सम्पूर्ण मनोरथों से तथा केवलज्ञान से परिपूर्ण हैं। उन अरिहन्त के समान लोक में जल से भरा पूर्ण कुम्भ कलश उत्तम मंगल के रूप में प्रसिद्ध है।

वर्षायोग निष्ठापन विधि

शंका-वर्षायोग निष्ठापन (समापन) में भी क्या मंगलगोचर भक्तप्रत्याख्यान करना चाहिये?

समाधान-हाँ, वर्षायोग निष्ठापन में भी मंगल गोचर भक्त प्रत्याख्यान करना चाहिये। वर्षायोग निष्ठापन में एक दिन पूर्व अर्थात् कार्तिक वदी तेरस को आहार के पश्चात् गुरु या जिन की साक्षी में मंगलगोचर भक्त प्रत्याख्यान विधि करनी चाहिये।

शंका-मंगलगोचर भक्तप्रत्याख्यान की विधि क्या है?

समाधानः-कार्तिक कृष्णा तेरस को आहार ग्रहण करने के पश्चात् गुरु या जिन की साक्षाी में सर्वप्रथम ईर्यापथ प्रतिक्रमण करें पश्चात् दण्डक सहित वृहद् सिद्ध और योगिभक्ति कर कार्तिक कृष्ण चौदस का उपवास ग्रहण कर भक्त (आहार) का प्रत्याख्यान धारणकर आचार्य भक्ति, शांतिभक्ति तथा समाधिभक्ति पढ़ें, यही मंगल गोचर भक्त प्रत्याख्यान है।

शंका-तो क्या इस दिन भी मंगलगोचर माध्यान्हिक देववंदना करना चाहिये? यदि हाँ तो उसकी विधि क्या है?

समाधान-वर्षायोग निष्ठापन के एक दिन पूर्व अर्थात् कार्तिक कृष्णा तेरस के दिन भी दोपहर की सामायिक में दण्डक सहित वृहद् सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचमगुरुभक्ति, शान्तिभक्ति एवं समाधिभक्ति पढ़ना चाहिये।

वर्षायोग निष्ठापन कब करें

ऊर्जकृष्ण चतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्।

(अनगार धर्मा. 9/67)

अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की अन्तिम रात्रि में वर्षायोग का निष्ठापन करें।

वर्षायोग निष्ठापन कैसे करें-जो विधि वर्षायोग प्रतिष्ठापन की है वही विधि वर्षायोग निष्ठापन की है।

वर्षायोग निष्ठापन के बाद वीरनिर्वाण क्रिया करें।

वीर निर्वाण क्रिया में क्या करना चाहिये

योगान्तेऽर्कोदये सिद्धनिर्वाण गुरु शान्तयः।
प्रणुत्या वीर निर्वाणे कृत्यातो नित्यवन्दना॥

अर्थात् वीरनिर्वाण में सिद्ध, निर्वाण, पंचगुरु, शांतिभक्ति करना चाहिये पश्चात् नित्यवंदना करना चाहिये।

(अ.न. धर्मा. 9/70)

वर्षायोग में गमनागमन के कुछ विशेष नियम

(देखें अनगार धर्मामृत 9/68-69) यथा

मांस वासोऽन्यदैकत्र योगक्षेत्रं शुचौ व्रजेत्।
मार्गेऽतीते त्यजेच्चार्थवशादपि न लंघयेत्॥
नभश्चतुर्थीं तद्याने कृष्णां शुक्लोर्जपञ्चमीम्।
यावन्न गच्छेत्तच्छेदे कथंचिच्छेद माचरेत्॥

(1) श्रमणों को वर्षायोग के अलावा अन्य हेमन्त आदि ऋतुओं में एक स्थान/नगर आदि में अधिक से अधिक एक माह तक ही ठहरना चाहिये।

(2) तथा आषाढ़ माह तक वर्षायोग के स्थान में प्रवेश कर लेना चाहिये।

(3) एवं मार्गशीर्ष बीतने पर वर्षायोग के स्थान को छोड़ देना चाहिये।

(4) कितना भी प्रयोजन क्यों न हो, तो भी कार्तिक शुक्ला पंचमी तक वर्षायोग स्थान से अन्य स्थान में विहार नहीं करना चाहिये (यदि धर्म प्रसंग पर जाना भी पड़े तो शाम तक लौटकर आ जाना चाहिये)

(5) किसी दुर्निवार उपसर्ग आदि के कारण वर्षायोग की सीमा का उल्लंघन करना पड़े तो प्रायश्चित लेना चाहिये।

शंका-तो क्या किसी भी परिस्थिति में वर्षायोग में विहार नहीं करना चाहिये?

समाधान-नहीं, वर्षायोग स्थापना के बाद विहार नहीं करना चाहिए। यदि विहार करते है तो प्रतिज्ञा हानि होगी। हाँ, यदि संयम विघातक कोई परिस्थिति उपस्थित हो तो विहारकर सकते हैं।

शंका-किस परिस्थिति में विहार कर सकते हैं?

समाधान- मार्यां दुर्भिक्षे ग्रामजनपद चलने वा गच्छन्निमित्ते समुपस्थिते देशान्तरं याति। अवस्थाने सति रत्नत्रयविराधना भविष्यतीति।

(अनगार धर्मामृत 9/80-81 टीका)

अर्थात् यदि महामारी फैल जाये, दुर्भिक्ष पड़ जाये, गांव या प्रदेश में किसी कारण से उथल-पुथल हो जाये तो मुनि देशान्तर में जा सकते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति मे वहाँ ठहरने से रत्नत्रय की विराधना होगी। यही कथन भगवती आराधना के टीकाकार अपराजितसूरि का भी है। विशेष यह है कि आषाढ़ की पूर्णमासी बीतने पर प्रतिपदा आदि के दिन देशान्तर गमन कर सकते हैं।

शंका-कहाँ तक विहार कर सकते हैं

समाधान-

द्वादशयोजनान्येष वर्षाकालेऽभिगच्छति।
यदि संघस्य कार्येण तदा शुद्धो न दुष्यति॥

यदि वादविवादः स्यान्महामतविघातकृत।
देशान्तरगतिस्तस्मान्न च दुष्टो वर्षास्वपि॥

(सिद्धांतसार संग्रह 10/59-60 पृ. 248)

वर्षाकाल में संघ के कार्य के लिए यदि मुनि बारह योजन (144 कि. मी) तक कहीं जाएगा तो भी वह शुद्ध है प्रायश्चित का भागीदा ही नहीं है यदि वाद-विवाद से महासंघ का नाश होने का प्रसंग हो तो वर्षाकाल में भी देशान्तर में जाना दोषयुक्त नहीं है। साधुसमाधि का कोई प्रसंग मिले तो साधु वहाँ जा सकता है परन्तु सामान्य परिस्थिति में साधुओं को चातुर्मास स्थापना के स्थान को छोड़ने का निषेध है।

"वर्षायोग और मंगल कलश स्थापना"

यद्यपि वर्षायोग के समय की जाने वाली विधि में मंगल कलश स्थापना का किसी भी शास्त्रों में वर्णन नहीं मिलता है। प्राचीनकाल में मुनिगण जंगल में तथा नगरों में भी रहते थे वहाँ वर्षायोग स्थापना के समय कोई भी श्रावक उपस्थित नहीं रहते थे तब मंगल कलश स्थापना का कोई प्रसंग ही नहीं बनता था अतः वे कलश स्थापना नहीं करते थे।

परन्तु जबसे मुनिगण नगर, ग्रामों में वर्षायोग करने लगे, तब से श्रावकगण गुरुभक्ति से प्रेरित हो अपने-अपने नगरों में वर्षायोग करने हेतु मुनिगणों से प्रार्थना करने लगे तथा वर्षायोग की स्थापना महोत्सव के रूप में करने लगे एवं ऐसे अवसर पर आसपास की समाज व प्रतिष्ठित लोगों को आमंत्रण कर वर्षायोग की निर्विघ्न पूर्णता हेतु "मंगल कलश" की स्थापना करने लगे।

मंगल कलश-कलश किसी भी धातु के या मिट्‌टी का भी कलश

हो सकता है। सम्प्रति कई स्थानों में बने-बनाये विभिन्न डिजायनों के कलश उपलब्ध होते हैं। वहाँ से श्रावणगण क्रय कर प्राप्त करते हैं। कितने कलश होना चाहिये यह सब वहाँ की समाज पर ही निर्भर करता है।

मंगल कलश स्थापना कर्ता-'मंगलकलश' स्थापन कर्ता का भी चयन सामाजिक पंचायत ही निश्चित ही निश्चित करती है कि कलश किस व्यक्ति विशेष के कर कमलों से स्थापित करायें या फिर बोली द्वारा। वर्षायोग के बाद वह कलश प्रायः उसी श्रावक को ससम्मान भेंट किया जाता है। वह श्रावक भी उसे अपने घर में मंगल सुख-समृद्धि हेतु उचित स्थान पर स्थापित करते हैं।

मंगल कलश स्थापना विधि-मंगल कलश स्थापना विधि किसी योग्य पंडित आदि द्वारा की जाती है, जो निम्न प्रकार से की जाती है-सर्वप्रथम

1. कलश में देखें कोई जीव आदि तो नहीं है यदि है तो सावधानी से उसे निकाल दें।
2. फिर कलश को धोकर पोंछ लें या फिर गीले व सूखे कपड़े से अंदर-बाहर पोंछ लें।
3. कलश स्थापन कर्ता सपरिवार का सम्मान करें। जल से मंत्र शुद्धि कर तिलक लगायें, रक्षा सूत्र मौली बंधन करें।
4. मंगलाष्टक पाठ पढ़ें।
5. यजमान सहित पंडित-मंगलाष्टक के स्तोत्र के प्रत्येक काव्यानुसार दशों-दिशाओं में पुष्प या पीली सरसों मंत्रोच्चारण के साथ क्षेपण करें।
6. कलश में स्वस्तिक बनवायें।
7. कलश में मौलि बंधन करवायें।
8. कलश में मांगलिक द्रव्य (5 हल्दी, 5 सुपाड़ी, सरसों धनिया, नव या पंचरत्न, चाँदी के एक या पाँच सिक्के डलवायें)।

9. पुण्याहवाचन करें।

10. मूलनायक भगवान को अर्घ चढ़ायें।

11. जो भी मुनि/आर्यिका संघ हो उनके गुरु परम्पराचार्यों को अर्घ चढ़ायें।

12. जिनके सान्निध्य में वर्षायोग स्थापना हो रही है उन संघ के नायक की पूजा करें या अर्घ चढ़ायें।

13. चतुर्दिग्वंदन विधि को कर कलश स्थापित करें।

"मांगलिक सरसों क्षेपण"

(वर्षायोग स्थापन में) दिग्वंदना के समय जब मुनिगण ऋषभादि आठ तीर्थंकरों की स्तुति करते हैं, तब गणमान्य श्रावक वर्षायोग की निर्विघ्न समाप्ति हेतु दशों-दिशाओं में प्रत्येक तीर्थंकर की स्तुति के समय क्रमशः एक-एक दिशा में प्रदक्षिणा क्रम से पुष्प/पीली सरसों प्रक्षेपण करते हैं।

मंगल कलश स्थापना ऐसे स्थान पर करें, जहाँ वे कलश वर्षायोग निष्ठापन (विसर्जन) तक स्थिर रखे रहें। एक बार स्थापित कर देने पर फिर उन कलशों को नहीं उठाना चाहिये।

मंगल कलश स्थापना मुख्यतः यजमान जोड़े (पति-पत्नि) करते हैं। विदुर या विधवा महिलाएँ किसी जोड़े को ही आगे करें।

पंडित सर्वप्रथम जहाँ मंगल कलश स्थापना करनी है तब

1. उस स्थान को जल के छीटे दें, स्वच्छ करें।
2. वहाँ केसर या चावल से स्वस्तिक बनायें।
3. फिर दिग्वंधन करें।
4. कलश स्थापन करें।
5. दीप प्रज्ज्वलन करें।

परम पूज्य वात्सल्य रत्नाकर
आचार्य श्री १०८ विमल सागर जी महाराज
परम पूज्य तपस्वी सम्राट
आचार्य श्री १०८ सन्मति सागर जी महाराज

परम पूज्य गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज के राष्ट्रीय आचार्य पदारोहण के अवसर पर उनके शिष्य परशिष्यों का विशाल
यति सम्मेलन एवं युग प्रतिक्रमण, करगुवा जी, झांसी (उ.प्र.) – 2017